

पर्यावरण संरक्षण-भारतीय संस्कृति में

महत्त्व-एक अध्ययन

डॉ. संजीव कुमार*

पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के इन्वोरोने शब्द से हुई है जिसका अंग्रेजी अनुवाद है इन्वायरमेन्ट। इसका अर्थ है 'द राउण्ड' अर्थात् चतुर्दिक घेरता हुआ। हिन्दी भाषा का पर्यावरण शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- परि एवं आवरण। 'परि' का अर्थ है 'चारों ओर' और 'आवरण' का अर्थ है 'घेरा', अर्थात् हमारे चारों ओर जो भी प्राकृतिक और मानव निर्मित चीजें हैं, जिसमें हम सभी तथा अन्य जीवनधारी रहते हैं, सब मिल कर पर्यावरण का निर्माण करती है। पर्यावरण का तात्पर्य केवल उस बाह्य जगत से ही नहीं है, जो व्यक्ति को चारों ओर से घेरे हुए है, बल्कि वे सभी वस्तुएँ जो मानव जीवन को प्रभावित करती हैं, पर्यावरण के अन्तर्गत आती हैं। पर्यावरण को भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपने-अपने अलग दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है।

फिटिंग के शब्दों में "पर्यावरण किसी जीवधारी को प्रभावित करने वाले समस्त कारकों का योग है।"¹

हरकोविट्ज के अनुसार, "किसी जीवित तत्व के विकास चक्र को प्रभावित करने वाले समस्त वाह्य दशाओं को पर्यावरण कहते हैं।"²

रॉस ने लिखा है, "पर्यावरण एक वाह्य शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है।"³

जिसबर्ट के शब्दों में, "जैसा किनाम से स्पष्ट है, पर्यावरण वह सब कुछ है जो किसी वस्तु को तात्कालिक रूप से घेरता है और उस पर प्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव डालता है।"⁴

डेविस ने पर्यावरण को मूर्त वस्तु न मानकर अमूर्त वस्तु माना है।⁵

21वीं सदी पर्यावरण जागरूकता का सदी है। वर्तमान समय में पर्यावरण की रक्षा सुरक्षा यहाँ के बुद्धिजीवियों एवं आम जानता सबों का पुनीत कर्तव्य है। गांधी का यह कथन कि 'यह धरती सबकी जरूरत पूरी कर सकती है, पर किसी एक का भी लालच पूरा नहीं कर सकती'⁶ न केवल तर्क के आधार पर, अपितु

*पी-एच.डी. वि.वि.अम्बेडकर विचार एवं समाज कार्य विभाग ति.मॉ. भा.वि.वि., भागलपुर

हालात को ध्यान में रख कर सोचें तो भी सर्वथा सही प्रतीत होता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी आज विकास के प्रखर सेतु मान लिया गए हैं, पर उनकी अधोगति से दुनियाँ परिचित होने लगी है। बहुत से कारणों से से इसका एक मुख्य कारण प्रौद्योगिकी की वह जटिलता भी रही है जो आम और निर्धन व्यक्ति की पहुँच से बाहर की चीज है। आम आदमी के लिए रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति बुनियादी बात है। ये आवश्यकताएं सरलता से कैसे पूरी हो सकती हैं यही देखना व्यवस्था का प्राथमिक दायित्व बनता है। आम आदमी के लिए भोजन, वस्त्र, आवास और जिन परिस्थितियों में वह जीता है उसमें निर्मित उसकी संस्कृति यदि बखूबी उपलब्ध रहे तो एक सन्तुलित और समतापरक समाज की परिकल्पना सरकार हो सकती है।

इसके लिए कोई भी बाहरी 'मॉडल' उपयुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि वैसे 'मॉडल' निर्धन और आम आदमी की क्षमता से बाहर का होगा। वैसे 'मॉडल' बना देने में जो पूंजी और बाहरी संसाधनों की जरूरत पड़ेगी वे सहज रूप से बिना किसी प्रकार के विनाश के प्राप्त नहीं किये जा सकते। ठीक इसके विपरीत स्थानीय सामग्री और स्थानीय उपभोग को आधार मानकर यदि नीतिगत निर्णय ले लिया जाय और उसके क्रियान्वयन में स्थानीय को प्रमुखता दी जाय तो एक नये प्रकार के समाज की संरचना की जा सकती है।

ऐसी संरचना में हमारी प्राकृतिक सम्पदाएं अत्यधिक सहायक हो सकती हैं। प्रकृति में जो कुछ विद्यमान है उसका मूल्य अपरिमित है। उसके दोहन और उपभोग और उसकी पुनर्चना, पुनर्भरण में नियंत्रण स्थापित करने की सामर्थ्य स्वयं प्रकृति के ही पास है। मनुष्य अपने से प्रकृति के इस अनूठे सामर्थ्य के साथ सुसंगति कायम करने के लिए यदि संकल्पित हो जाए तो शुरू में उल्लिखित गांधी के कथन का गूढार्थ हर व्यक्ति सकता है।⁷

मनुष्य प्रकृति का ही एक अंग है। उसे प्रकृति ने दो हाथ देकर उपभोग की सीमा निर्धारित कर दी है। मनुष्य की सम्पूर्ण चर्या-आहार, शौच, निद्रा, सब में एक सीमा है और सबकी एक लय है। यह सीमा और लय विकृति की ओर उन्मुख न हो, यह मनुष्य के विवके पर निर्भर है।

सम्पूर्ण मनुष्य समाज में विवके के जागृत हो जाने से ही प्रकृति हमारी जरूरत को सहजता से पूरा करेगी। यदि ऐसा नहीं होगा तो यही प्रकृति अपने दुश्चक्र से हमें सजा भी देगी।

यदि हम स्वीकार कर लें कि हम सभी-सम्पूर्ण प्राणि-जगत्-प्रकृति की सन्तान है तो हमें यह मान लेने में थोड़ी भी भी झिझक नहीं होनी चाहिए, कि हम वेवश नहीं हैं। प्रकृति की एक अनुपम निधि है वृक्ष। इस धरती पर भारत भूमि पर

इतनी विविध वृक्षावलिियां हैं कि वे मनुष्य जाति से लेकर सम्पूर्ण प्राणि एवं वनस्पति जगत् की हर जरूरत पूरा हो जाएगी। इसीलिए भारत के महान ऋषियों, महार्षियों ने पेड़ लगाने और उनकी परवरिश करने पर अपने उपदेशों में अत्याधिक बल दिया।

हम जानते हैं कि पेड़-पौधे, विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां, झाड़ियां, घासें घरती माता का आंचल है। आंचल ही नहीं रक्षा कवच भी है। जब तक यह आंचल या 'रक्षा कवच' ठीक हालत में रहा, यह घरती, इसकी मिट्टी और इनमें बसेरा करने वाले कीट, जीव-जन्तु भी ठीक रहे। तब तक तेज धूल-भरी आंधियाँ, भूमि और मिट्टी का कटाव, बाढ़, नदी-नालों का विध्वंसक बहाव भी नियंत्रित रहता रहा। जैसे-जैसे इनका विनाश होता गया, विध्वंस की दुःखदायी घटनाएँ भी बढ़ती गईं। कई सर्वेक्षणों से इन घटनाओं की जानकारी हमें मिलती है।

राजस्थान में अरावली के जंगलों के विनाश से जो दुर्दिन पिछले एक-डेढ़ दशक से हमें देखने को मिल रहे हैं वे केवल राजस्थान के लिए ही नहीं, बल्कि भारत के एक बड़े भू-भाग को लील लिये जाने के खतरे पैदा हो गए हैं।

अरावली पर्वत श्रृंखला गुजरात के पालनपुर से दिल्ली तक उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पूर्व की ओर लगभग 692 किलोमीटर में विस्तृत है। इस 50 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में से कोई पांच हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में ही जंगल बचे हैं। इस विनाश से यहां के आदिवासी और गिरिजन समाज के जीवन और उनके भरण-पोषण पर जो दुष्प्रभाव पड़ा है वह तो पीड़ादायी है ही, पर इससे भी दुःखदायी असर पर्यावरण और परिवेश पर पड़ा है जिसे फिर से व्यवस्थित करने को कोई अन्य विकल्प विज्ञान और प्रौद्योगिकी के पास नहीं है।

डॉ.सरदार सिंह ढाबरिया के अनुसार वनविहीन अरावली के कारण इस भू-मण्डल पर बनी रहने वाली नमी की पर्त समाप्त हो गई है, और अब एक गर्म वर्त बनने लगी है। इसके कारण अरब सागर और बंगाल की खाड़ी से उठने वाले मानसून अब बिना बरसे ही जाने लगे हैं। यही पर्वत श्रृंखला एक समय से पूर्व और उत्तर-पूर्व की ओर भारतीय रेगिस्तान को रोकती भी रही है लेकिन अब यह पर्वत-माला रेगिस्तान के विस्तार के प्रतिकार में निर्बल हो गयी है।⁹

वनों के विनाश से अरावली में अनुचित और अवैधानिक खनन कार्य भी बढ़ने लगा है। इससे यहां भू-क्षरण की समस्या गंभीर होने लगी है।

अरावली के वनों के विनाश से पैदा होने वाली समस्याओं पर जो अध्ययन अब तक सामने आया है। यह हमें सचेत करने के लिए पर्याप्त है लेकिन अभी तक न जाने किस महाविनाश की ओर देखना पड़ेगा कि हमारी सुशुप्त अवस्था में कोई हरकत क्यों नहीं हो रही है।

हमारी प्राकृति सम्पदाओं में मिट्टी और जल अत्यधिक मूल्यवान संसाधन हैं। जल, जंगल और जमीन के सह-चरण से ही जीवन का संचरण होता है। मिट्टी और जल में अनगिनत सजीव तत्व होते हैं। ऐसा माना जाता है कि एक घन सेंटी मीटर उपजाऊ मिट्टी में अरबों जीवित प्राणी हैं। आज इस जीवन्त मिट्टी को रासायनिक उर्वरकों से विनष्ट किया जा रहा है।¹⁰ दरअसल, प्रकृति की इस सम्पदा के साथ हमारे जीवन्त और मूलभूत रिश्ता पूरी तरह से टूटता नजर आ रहा है। हमारी परिवेशिकी के साथ हिंसा और विलगाव की इन परिस्थितियों में प्रकृति प्रदत्त स्वास्थ्य, सौंदर्य और स्थायित्व दीर्घकाल तक प्रस्थापित नहीं रह सकते। इनके पुनर्स्थापन के लिए हमें लालच और स्वार्थ की वृत्ति का त्याग करना होगा और मानव मूल्यों का सम्मान कर उन्हें दृढ़ इच्छा-शक्ति के साथ स्वीकार भी करना होगा।

प्राकृतिक सम्पदा पर निर्भरता एक प्रकार से स्व-निर्भरता मानी जा सकती है क्योंकि प्रकृति में जो कुछ है-वनस्पति, जीवन-जन्तु, जल-मिट्टी आदि, सभी जीवन्त हैं, प्राणवान हैं। जो जीवन्त या प्राणवान हैं उन्हें अपने लिए खुराक भी चाहिए। यह प्रकृति की ही खूबी है कि वह अपनी खुराक स्वयं तैयार करती है, उसी से वह स्वयं पोषण प्राप्त करती है और अपने ही द्वारा नियंत्रित चक्र से दूसरों को भी पोषित करती है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के जरिये सभी प्रकार के उत्पाद मनुष्य ने निर्मित कर लिया हैं, पर जीवनयापन के लिए जो पोषण या खुराक उसे चाहिए उसके लिए वह अभी भी प्रकृति पर यानी मिट्टी, जल और वायु को प्रदूषित करने वाली उन सभी अवस्थाओं को हम समझें और उससे प्रकृति को मुक्त रखें। यदि ऐसा करने में हम असफल रहे अथवा इसमें किंचित् भी उपेक्षा की तो वह समय दूर नहीं कि जीवनदायी पोषण या खुराक से भी हमें वंचित होना पड़ेगा।

यह निरर्थक अहंकार ही मानना चाहिए कि खुराक या पोषण के लिए भी विज्ञान के जरिय 'कृत्रिम खुराक' यानी 'पिल्स' प्राप्त की जा सकती है।

यह मानते हैं कि मिट्टी में भी जीवन्त तत्व है और वह अपना पोषण, पुर्नभरण स्वयं करने की सामर्थ्य रखती है। लेकिन इसी मिट्टी से एक ही साथ अत्यधिक उत्पादन ले लेने के लोभवश उसमें रासायनिक उर्वरक मिलाने की जब कोशिश की जाती है तो वह उसकी नैसर्गिक क्रिया के साथ छेड़-छाड़ मानी जाती है। यह नैसर्गिक क्रिया रासायनिक उर्वरकों के कारण मिट्टी के जीवन्त तत्वों को नष्ट होने के साथ स्वतः समाप्त हो जाती है। मिट्टी को अप्राकृतिक तरीकों से अधिक उपजाऊ बनाने के लिए रासायनिक खादों का जहां-जहां अत्याधिक इस्तेमाल है वहां हम मिट्टी की मृतावस्था को भी देख रहे हैं।

इस प्रकार अप्राकृतिक तरीकों से मिट्टी को उपजाऊ बनाकर अधिक उत्पादन तो लिया जा सकता है, पर उन उत्पादों का पोषक तत्व न तो बढ़ाया जा सकता है और न सन्तुलित ही रखा जा सकता है। यही वजह है कि ऐसे खाद्यान्नों का जीवन पर कई तरह से प्रतिकूल असर पड़ता है। विभिन्न प्रकार की व्याधियाँ और शारीरिक विकृतियाँ इन्हीं रासायनिकों जो खाद और कीटनाशकों (फर्टीलाइजर व पेस्टीसाइड्स) के उपयोग से खाद्यान्नों, मिट्टी और जल में घुलते-मिलते हैं, से पैदा होती है।

मिट्टी में रासायनिक उर्वरकों की जरूरत क्यों पड़ती है? तभी, जब हम उसकी क्षमा से अधिक उत्पादन लेने की सोचे। लेकिन अधिक लेते रहने का सिलसिला बहुत जल्दी समाप्त हो जाता है। हरित क्रांति के नाम पर मिट्टी के अति शोषण से निकले परिणामों से यही बात देखने को मिलती है। हरित क्रांति के नाम पर मिट्टी के अति शोषण से निकले परिणामों से यही बात देखने को मिलती है। जबकि मिट्टी की नैसर्गिक उर्वरा क्रिया में ये खतरे नहीं हैं। मिट्टी में असंख्य जीवाणु तत्व होते हैं। ये जीवाणु सेन्द्रीय पदार्थों का, जो पौधों की सूखी पत्तियों, मृत पौधों तथा विभिन्न अवशेषों से प्राप्त होते हैं, भोजन करते हैं। इसके बदले में ये अपने अवशेष छोड़ते हैं जो मिट्टी को उर्वर बनाते हैं।

हम केंचुए को लें। यह जन्तु मिट्टी को उपजाऊ बनाने में अत्यधिक सहायक होता है। अपना रास्ता बनाने के लिए केंचुआ दिन भर मिट्टी को आगे-पीछे खोदता रहता है। वह मिट्टी को मुँह में भर कर मल-मूत्र के साथ निकाल देता है। यदि जमीन में हजारों केंचुए हो तो मिट्टी नरम और भुरभुरी बनने में दिक्कत नहीं आती। ऐसा मानते हैं कि एक केंचुआ छः महीने में 9 किलोग्राम सेन्द्रीय पदार्थ अपने शरीर से तैयार कर मिट्टी में मिला देता है।

मिट्टी में जो जीवाणु होते हैं कि वे एक घंटे में दो बार अपना वंश बढ़ाते हैं। इस प्रकार चौबीस घंटों में 1,70,00,000 जीवाणु पैदा होते हैं।¹¹ इन जीवाणुओं पर अन्य जीवन-जन्तुओं का जीवन निर्भर रहता है। इस तरह यह एक ऐसा प्राकृतिक चक्र है जिससे हर जीव-जन्तु की जाति एक-दूसरे के नियंत्रण में सहायक होती है।

इसी प्रकार बड़े मृत जानवरों को खाने के लिए गिद्ध, चील, गीदड़ रहते हैं। जंगल को साफ-सुथरा रखने के ये अपने के ये अपने ही तरीके हैं जो सब कुछ सन्तुलित रखते हैं। इसे समझने के लिए भयानक दुर्भिक्ष और अकाल के कारण पश्चिमी राजस्थान में सन् 1985, 1986 और 1987 में मरे भारी पशुधन की ओर हम अपनी नजर करें। पशुधन की असंख्य मौतों के कारण जंगल सड़ांध में नहीं बदल गये, पर हड्डियों के कंकाल हजारों मृत पशुओं की साक्षी देते रहे।¹² क्यों?

गिद्ध और चील जंगल की सफाई के लिए तैनात जो हैं।

ये सभी बातें प्रकृति के अपने सहज सन्तुलन की बातें हैं जिसके लिए बाहरी या ऊपरी उपाय कभी भी पर्याप्त नहीं हो सकते। लेकिन कई बार ऊपरी या बाहरी उपाय भी करने पड़ सकते हैं। यही पर मनुष्य का विवेक कसौटी पर चढ़ता है।

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण का महत्त्व :- प्रकृति ने मनुष्य को अनुठी प्रतिभा, क्षमता, सृजनात्मकता तथा तर्कशक्ति देकर विवेकवान, चिन्तनशील और बुद्धिमान प्राणी के रूप में निर्मित किया है। अतः मनुष्य का यह दायित्व है कि वह प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित चक्र को बनाए रखते हुए पर्यावरण का संरक्षण करे और स्वास्थ्य पर्यावरण बनाए रखना अपना पुनीत कर्तव्य समझे।

हमारी भारतीय संस्कृति सदा से ही पर्यावरण संरक्षण की पोषक रही है। पर्यावरण का शोषण करना नहीं, बल्कि दोहन और पोषण करना हमारी संस्कृति का आधार रहा है। जैसे गाय का हम दोहन करते हैं और दूध प्राप्त करते हैं, किन्तु दोहन के पूर्व एवं पश्चात् हम उसका पोषण भी करते हैं। ठीक यही पर्यावरण के साथ करना भी हमारी संस्कृति हमें सिखाती है।

हमारे धर्मशास्त्रों में पर्यावरण को उन तत्त्वों के रूप में स्वीकार किया गया है जो सम्पूर्ण ब्रह्मांड को आवृत करते हैं। ये पंच तत्त्व— पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश एवं वायु।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति के प्रत्येक तत्व को महत्त्व प्रदान किया गया है और उसकी सुरक्षा अपने प्राणों से भी बढ़ कर किए जाने को मान्यता दी गई है। हमारी संस्कृति में भी प्रिय माना जाता है। प्रकृति के विभिन्न तत्वों को जीवन के साथ इस अनुठेपन के साथ पियारा गया है जो अन्य संस्कृतियों में उपलब्ध नहीं है। हमारी भारतीय संस्कृति धर्म परायणता की संस्कृति है। प्रकृति को देवी-देवताओं के रूप में स्वीकार करके उसके पूजन, अर्चन, आदर, सम्मान और संरक्षण की शिक्षा हमारी संस्कृति हमें प्रदान करती है।

सूर्य, चंद्र एवं अन्य ग्रह नक्षत्र हमारी संस्कृति में देवों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे हमें जो प्रकाश, ताप आदि ऊर्जा प्रदान करते हैं, उसका आभार प्रदर्शित करने हेतु और उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने हेतु हम उनकी अर्चना करते हैं।

वनस्पतियाँ एवं पेड़-पौधे तो हमारी जीवन प्रक्रिया का अभिन्न अंग हैं। विभिन्न संस्कारों के पर्वों के अवसरों पर वनस्पतियाँ, पत्र एवं पुष्प के रूप में विराजती हैं। तुलसी, शमी, आम, पीपल, केला, वट वृक्ष, अशोक, आँवला तथा अन्य कई पेड़ पौधे नित्य अथवा विशेष पर्वों पर पूजे जाने की परम्परा हमारी ही संस्कृति में विद्यमान है। हमारी संस्कृति वनों और तपोभूमि में ही फली-फूली है। हम वृक्षों

को देने वाला अर्थात् देवता समझकर कृतज्ञ भावना से उनके उज्ज्वल आदर्श को ग्रहण करते हैं। वृक्ष हमारे उपदेशक हैं, जो हमें निरंतर बगैर किसी भेदभाव के निःस्वार्थ-भाव से देने में विष्वास करते हैं। बड़े होकर फल-फूलों के भार से झुके हुए पेड़ विनम्र होने का उपदेश देते हैं जो हमारी सम्यता एवं संस्कृति के मूलभूत आधार हैं। महाकवि रसखान, तुलसीदासजी ने भी अपने काव्य में पेड़ों का वर्णन किया है। अशोक महान् ने लोकहितार्थ पेड़ लगवाए। ऐसे कई उदाहरण भारतीय इतिहास में उपलब्ध हैं। पेड़ केवल लगाने वाले को नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ी को भी लाभ प्रदान करते हैं। जिन पेड़ों ने आदर्श के प्रेरणा प्रदान की है, उनके प्रति संवेदनशील लेकर उनका संरक्षण करने का कर्तव्यबोध हमारी संस्कृति ने हमें कराया है। नदियाँ हमारे देश में सदैव ही पूजनीय रही हैं। उन्हें हमारी संस्कृति ने 'माता' का सम्बोधन दिया है। नदियाँ हमारी धार्मिक आस्था एवं श्रद्धा का केन्द्र रही हैं। न केवल उनके पवित्र जन में, बल्कि उनके पास बैठकर स्नान करने मात्र से हम अपने जीवन को सफल मानते हैं। माँ गंगा पतित पावनी मानी जाती है। हरिद्वार की हर की पौड़ी समस्त भारतीयों के लिए श्रद्धेय हैं। पवित्र नदियों के तटों पर ही हमारी संस्कृति का विकास हुआ है। इनकी पूजा करना तथा इनके जल को स्वच्छ एवं निर्मल बनाए रखना तथा इनका संरक्षण करना भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है।

वनजीवों की उपयोगिता के कारण इनका संरक्षण भारतीय संस्कृति का विशिष्ट और अभिन्न अंग रहा है। मोर सरस्वती के साथ, सिंह महाकाल के साथ, बैल शिव के साथ, हाथी इंद्र के साथ, चूहा गणेश के साथ जाता है। ज्योतिष में राशियों के नाम पशुओं के नाम पर हैं। अशोक-स्तंभ पर वनजीवों की सुरक्षा के निर्देश भी उपलब्ध हैं। अनेक पशु-पक्षियों को अपने परिवार के सदस्यों की भाँति हम घरों में भी रखते हैं।

भारतीय माँ जिस प्रकार विभिन्न प्रकार विभिन्न प्रकार के कष्ट सहन करके भी बच्चों की सुरक्षा करते हुए उनके विकास व संरक्षण के प्रति सचेष्ट रहती है, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समर्पित रहती है, ठीक इसी प्रकार प्रकृति हमारी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। हमारी संस्कृति में प्रकृति के सभी तत्वों को प्रदान किया गया है और प्रदायिनी शक्ति के कारण उन्हें देवता माना गया है। जिसे देवता मानकर पूजा जाय और जिसके प्रति आदर, सम्मान और कृतज्ञता का भाव हो, उसको विनष्ट करने अथवा हानि पहुँचाने का विचार भी हमारी संस्कृति और कृतज्ञता का भाव हो, उसको विनष्ट करने अथवा हानि पहुँचाने का विचार भी हमारी संस्कृति में पापपूण्य समझा जाता है। उसका तो सिर्फ संरक्षण किया जा सकता है, वृद्धि की जा सकती है और उससे सानिध्य प्राप्त किया जा

सकता है। इस प्रकार हमारी भारतीय संस्कृति के पोषण और संरक्षण को महत्त्व देती है।

हमारे वेदों में भी पर्यावरण के समस्त अवयवों के संतुलन एवं शान्ति हेतु प्रार्थनाओं का वर्णन है—

ॐ द्योः शान्तिः अंतरिक्षः शान्तिः पृथ्वी शान्तिः रापः शान्तिः

औषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः विश्वदेवाः शान्तिः

ब्रह्म शान्ति सर्व शान्ति शान्तिरेव सा मा शान्ति रेधि

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।¹³

संदर्भ ग्रंथः—

1. अस्याना, डॉ.मधु; पर्यावरणः एक संक्षिप्त अध्ययन, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 2008, पृ. 2
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही
7. पटवा, शंभू; पर्यावरण की संस्कृति, बाग्देवी प्रकाशन बीकानेर, 2001, पृ. 52
8. वही
9. वही, पृ. 53
10. वही, पृ. 53
11. वही, पृ. 55
12. वही, पृ. 55
13. पर्यावरणः एक संक्षिप्त अध्ययन, पृ. 17
